* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः ।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १५ | गौराब्द ४८४, मास—विष्णु २२, वार—प्रद्युम्न, मंगलवार, ३१ चैत्र, सम्वत् २०२७, १४ अप्रैल १९७० | संख्या ११

अप्रैल १९७०

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीशुकदेव गोस्वामिना कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत २।४।१२-२४)

श्रीपरीक्षित् महाराजकी प्रार्थनासे श्रीशुकदेवजी भगवान् श्रीकृष्णकी गुण-महिमाको इस स्तोत्र द्वारा वर्णना करने लगे—

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायोपलक्ष्यवर्त्मने ॥१२॥

उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम है जो अपने पुरुषादि अवतार-समूह द्वारा अपरिमित और अनन्त ऐश्वर्य प्रकाश करते हैं। पहले पुरुषावतार लीलासे अनायास ही विश्व-की सृष्टि, स्थिति और लयके कारण स्वरूप होते हैं; दूसरे पुरुषावतार ब्रह्मादि समष्टि जीवोंके

अन्दर अन्तर्यामी रूपसे हैं । तीसरे पुरुषावतार साधारण व्यष्टि जीवोंके अन्दर अन्तर्यामी रूपसे वर्त्तमान हैं। भगवान्‌को जाननेके लिए एकमात्र उपाय स्वरूप भक्तियोग बड़े-से-बड़े योगियोंके लिए भी दुष्प्राप्य और दुर्ज्ञेय है ॥१२॥

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसम्भवायाखिलसत्त्वमूर्त्तये ।
पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥१३॥

उन भगवानको पुनः नमस्कार है जो राम-कृष्णादि अवतार रूपसे प्रकट होकर अपने प्रिय भक्तोंका दुःख दूर करते हैं । वे अभक्त राक्षस-असुरादियोंको मारकर उन्हें पुनर्जन्म प्रदान करते हैं । वे अप्राकृत शुद्धसत्त्वमय शरीरसे युक्त हैं । वे ही परमहंस आश्रममें स्थित भक्तिमिश्रज्ञानी और शुद्धभक्तोंको क्रमशः उनके द्वारा अन्वेषणीय ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द प्रदान करते हैं ॥१३॥

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥१४॥

उन अपने इष्टदेवको बारम्बार प्रणाम करता हूँ जो भक्तोंके पालक हैं और भक्तिहीन व्यक्तियोंद्वारा जाने नहीं जा सकते । उनके समान या उनसे भी अधिक ऐश्वर्य और किसीका भी नहीं है । वे अपने उस ऐश्वर्य और माधुर्यद्वारा स्वधाम मथुरामण्डल और ब्रह्मस्वरूप गोपालपुरमें लीला किया करते हैं ॥१४॥

यत्कीर्त्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१५॥

जिनकी लीलाओंका कीर्त्तन और स्मरण, जिनका श्रीविग्रह-दर्शन, जिनकी वन्दना और जिनकी कथाका श्रवण तथा जिनकी पूजा करनेसे तुरन्त ही लोकसमूहके समस्त प्रकारके अनर्थ विनष्ट हो जाते हैं, उन सुमङ्गल कीर्त्ति माधुर्यमय श्रीभगवानको बारम्बार मैं नमस्कार करता हूँ ॥१५॥

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात् सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।
विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥१६॥

जिनके अनर्थ सम्पूर्ण रूपसे दूर हो गये हैं, ऐसे बुद्धिमान् ज्ञानी व्यक्ति जिनके चरणोंकी आराधना कर इस जगत और पर जगत या इहकाल और परकालके लिए अन्तःकरण-

की विषयासक्ति परित्यागपूर्वक क्लेशशून्य होकर ब्रह्मस्वरूपा दिव्य भगवद्गति प्राप्त करते हैं, उन सुमङ्गल यशयुक्त भगवान्‌को बारम्बार प्रणाम है ॥१६॥

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मंत्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ ७॥

जिन्हें कर्मार्पण न करनेसे तपस्यापरायण ज्ञानी लोग, दानशील कर्मी लोग, प्रतिष्ठावान् कर्मी लोग, अश्वमेधादि यज्ञ करनेवाले, मनस्वी या योगी लोग, जपपरायण व्यक्ति अथवा सदाचारी पुरुष लोग—कोई भी मंगल प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते, उन सुमङ्गल अक्षय कीर्तिमान् भगवान्‌को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥१७॥

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुक्कशा आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥

किरात, हूण, अन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कश (चाण्डाल), आभीर, शुम्भ (सँथाल या एक देशवासी विशेष), यवन और खस आदि जो सभी व्यक्ति जातिगत पापद्वारा पूर्ण हैं और जो अपने कर्मवशतः पापयुक्त हैं, वे भी जिन भगवान्‌के आश्रित भागवतस्वरूप सद्गुरुका चरणाश्रय मात्र करनेसे ही जातिगत और कर्मगत दोषोंसे मुक्त होकर परम पवित्र हो जाते हैं, उन स्वाभाविकी प्रभुता और शक्तिसम्पन्न भगवान्‌को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभि र्वितर्क्यलिङ्गो भगवान् प्रसीदताम् ॥१९॥

वे ही अधीश्वरके रूपमें प्रसिद्ध हैं । वे ज्ञानी और योगी पुरुष लोगोंके लिए भी आत्मतत्त्व रूपसे उपास्य हैं । वे देवमय, धर्ममय एवं तपोमय हैं अर्थात् उन-उन मार्गोंद्वारा उपास्य हैं । कपटतायुक्त ज्ञानी और योगी लोगोंकी बात तो दूर रहे, निष्कपट ब्रह्मा-शङ्करादि भी निश्चित रूपसे जिनका स्वरूप जान नहीं पाते, वे ही परम परमेश्वर भगवान् मेरे प्रति प्रसन्न हों ॥१९॥

श्रियःपतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥२०॥

वे श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, समस्त सम्पत्तियोंकी अधिष्ठात्री देवी श्रीलक्ष्मीजीके पति हैं, वे ही यज्ञेश्वर हैं, वे ही सभी प्रजाओंके अधीश्वर हैं, वे व्यष्टि या प्रत्येक जीवके अन्तर्यामी पुरुष हैं, उनके भोग्य भुवनसमूहोंके भी वे ही एकमात्र भोक्ता हैं; कृपापूर्वक अवतरण कर उन्होंने धरापतित्व-लीला प्रकाश किया है । वे अन्धक-वंश, वृष्णि-वंश और सात्त्विक स्वभावसम्पन्न भक्तोंके एकमात्र पालक और आश्रय-स्थल हैं । उन सभी साधुपुरुषों-के पति श्रीभगवान् हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥२०॥

यदङ्घ्र्याभिध्यान समाधि-धौतया धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम् ॥२१॥

एकमात्र जिनके चरणकमलोंके प्रकृष्ट ध्यानरूप समाधिद्वारा बुद्धि शोधित होनेपर अर्थात् मनोधर्मसे निर्मुक्त होने पर सूरि लोग (महापुरुष लोग) निश्चितरूपसे आत्मतत्त्वकी उपलब्धि कर सकते हैं, ऐसी महिमायुक्त भगवान् मेरे प्रति प्रसन्न हों । पंडिताभिमानी लोग अपने पाण्डित्यके बलपर अपनी-अपनी रुचिके अनुसार परमात्माके स्वरूपको साकार-निराकार, जीवात्मस्वरूपको अणुप्रमाण या सर्वगत, विश्वको सत्य, मिथ्या या नित्य कहकर जो कुछ जड़ युक्तिद्वारा प्रतिपादन करते हैं, वे सभी मनोधर्मगत बातें हैं; क्योंकि उनकी बुद्धि ईश्वरके आश्रित न होनेके कारण शोधित नहीं हुई है । अतएव वे लोग भगवान्‌के तत्त्वका दर्शन नहीं कर सकते । ऐसे भगवान् श्रीमुकुन्द मेरे प्रति प्रसन्न हों ॥२१॥

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥२२॥

कल्पके प्रारम्भमें ब्रह्माके हृदयमें सृष्टि-विषया स्मृति प्रकाश कर जिनकेद्वारा प्रेरिता वेदरूपा सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रकटित हुई थीं, ऐसा जो प्रसिद्ध है और जो सरस्वती भी एकमात्र श्रीकृष्णको ही उपास्य रूपसे जानती हैं, ऐसे ज्ञानप्रदान करनेवाले व्यक्तियोंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीभगवान् मेरे प्रति प्रसन्न हों ॥२२॥

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पुरुषः ।
भुङ्क्ते गुणान् षोड़श षोड़शात्मकः सोऽलंकृषीष्टाखिलधीं वचांसि मे ॥२३॥

जो विभु पुरुष मनुष्यादि शरीरोंका निर्माण कर उसमें अन्तर्यामी रूपसे स्वयं वास करते हुए इन सभी शरीरोंकी सफलता विधान करते हैं, पुरमें वास करनेके कारण 'पुरुष'

नामसे प्रसिद्ध हैं, जो एकादश इन्द्रिय तथा पञ्च महाभूतरूप षोड़श तत्त्वोंके चैतन्य प्रकाशक आत्मारूपसे विराजित रहकर साक्षीस्वरूप और निर्लेप भावसे केवल दृष्टिद्वारा उन्हें भोग करते हैं, वे मेरे सभी वाक्योंको अलंकृत करें । अर्थात् जिस प्रकार देहमें आत्मा न रहनेसे बहुमूल्य वस्त्रादि अलङ्कारयुक्त देह भी साधु लोगोंके लिए अस्पृश्य हो जाता है, उसी प्रकार मेरे वाक्य भी भगवान्‌के अधिष्ठानसे रहित न हों ॥२३॥

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥२४॥

भगवान् वासुदेवके शक्त्यावेशावतार श्रीवेदव्यास, जो अत्यन्त असीम तेज सम्पन्न हैं, उन्हें नमस्कार है । भक्तोंने उनके मुखपद्मद्वारा निःसृत ज्ञानमय मकरन्द पान किया था ॥२४॥

॥ इति श्रीशुकदेव गोस्वामिना कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥

॥ इति श्रीशुकदेव गोस्वामी कृत श्रीकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

भक्तवत्सल भगवान्

भक्तनि हित तुम कहा न कियौ ?
गर्भ परीच्छित रच्छा कीन्ही, अंबरीष-व्रत राखि लियौ ॥

जन प्रह्लाद-प्रतिक्षा पुरई, सखा विप्र-दारिद्र हयौ ।
अंबर हरत द्रुपदी राखी, ब्रह्म-इन्द्रकौ मान नयौ ॥

पाण्डवकौ दूतत्व कियौ पुनि, उग्रसेनकौं राज दयौ ।
राखी पैज भक्त भीषमकी, पारथकौ सारथी भयौ ॥

दुखित जानि दोउ सुत कुबेरके, नारद-साप निबृत्त कियौ ।
करि बल-बिगत उबारि दुष्ट तै, ग्राह ग्रसत बैकुण्ठ दियौ ॥

गौतमकी पतिनी तुम तारी, देव, दवानलकौं अँचयौ ।
सूरदास-प्रभु भक्त-बछल हरि, बलिद्वारैं दरवान भयौ ॥

बहिर्मुखता और कपटता

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे श्रीकृष्णं दीनतारणम् ॥

आज हम लोग श्रीधाम नवद्वीपके अन्तर्गत ऋतु-द्वीपमें उपस्थित हुए हैं। बहुतसे व्यक्ति यह पूछ सकते हैं कि नाना तीर्थोंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता ही क्या है ? यदि घर बैठे ही हरिसेवा की जा सकती है, तो अन्यत्र जानेकी आवश्यकता क्या है ?

घरमें रहनेसे हम लोग साधु-वैष्णवोंका दुर्लभ सङ्ग प्राप्त नहीं कर सकेंगे —उन लोगोंके मुखसे हरिकथा सुननेका अवसर नहीं पाते । जब हमें कोई काम नहीं मिलता, तो हम लोग व्यर्थकी फालतू बातोंमें, परनिन्दा-परचर्चा आदिमें तथा कहानी-उपन्यास आदि पढ़नेमें समयको बिताया करते हैं । साधु लोगोंके निकट जानेसे हरिकथा सुन सकेंगे, अपने विचारमें भ्रान्ति रहनेके कारण जो सभी विपरीत या अमंगलजनक कर्म कर बैठते हैं, उनके हाथसे छुटकारा प्राप्त कर सकेंगे । इन्द्रियज-ज्ञान द्वारा हमारी जो असुविधा या विपत्ति उपस्थित होती है, साधु-सङ्गमें रहकर हरिकथा सुननेसे उससे रिहाई प्राप्त कर सकते हैं ।

श्रीहरि निर्गुण वस्तु हैं; हम लोग गुणजात मायिक जगतके निवासी हैं। अतएव हमारी सभी इन्द्रियाँ गुणजात वस्तुओंके साथ सम्मिलित होने योग्य हैं । इन सभी इन्द्रियों द्वारा हम लोग प्राकृत वस्तुओंका ही दर्शन प्राप्त करते हैं। गुणजात वस्तुओंका अतिक्रम कर निर्गुण वस्तु भगवानका साक्षात्कार करनेके लिए एकमात्र कण ही साधन हैं। छः इन्द्रियोंके क्रिया-कलाप जिस वस्तुके प्रति नियुक्त हो सकते हैं, वह गुणजात वस्तु है। गुण तीन हैं—सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक गुण मर्त्यमङ्गल करता है, राजसिक गुण द्वारा चालित होकर हम लोग क्षणिक मंगल या अमंगलकी ओर गमन करते हैं और तमोगुण द्वारा परम अमङ्गलके पथपर अग्रसर होते हैं । जब तक हम लोग जीवित रहते हैं, तभी तक हमारी इन्द्रियोंकी सार्थकता है, मरनेके पश्चात् उनका कोई मूल्य नहीं है। उस समय यह गुणजात जगत हम लोगोंके लिए स्तब्ध हो जाता है। किन्तु निर्गुण जगत स्तब्ध नहीं होता। क्योंकि वह अप्राकृत है।

हम लोग गुणातीत जगतका आदर करनेकी आवश्यकता नहीं समझते, क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ गुणजात जगतकी वस्तुएँ ग्रहण करनेके ही उपयोगी हैं । जिन सभी कार्योंका अनुष्ठान करनेसे हमारी इन्द्रियतृप्ति होती है, हम लोग वे सभी कार्य करनेका

प्रयास करते हैं। इस पृथिवीके नाना प्रकारकी इन्द्रिय-तृप्तिकर वस्तुओंसे हम लोग मोहित हो जाते हैं। मक्खीके गुड़ खानेकी तरह हम लोग उसी चेष्टामें डूब जाते हैं। जो सभी बातें हमने नहीं सुनी है, उसमें हमारी रुचि नहीं है। जड़ जगतके रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द युक्त पदार्थ हमारे ऊपर अपना आधिपत्य जमाकर हमें विषयोंमें नियुक्त करते हैं। हम लोग इन्द्रिय सुख ही चाहते हैं। अतएव जो व्यक्ति या वस्तु हमें जितने अधिक परिमाणमें इन्द्रिय-तृप्ति प्रदान करनेमें समर्थ है, वह उतने ही अधिक परिमाणमें हमारे लिए प्रिय है। हम लोग तुरन्त-प्रयोजनीय या तात्कालिक सुखकर विषयोंका आदर कर संसारमें चिर दिन इसी प्रकारसे जीवन बितानेके लिए व्यस्त होते हैं। हमारी बुद्धि क्रमशः मनुष्यत्वकी ओर जानेसे तो दूर रहे, बल्कि धीरे-धीरे नीचेकी ओर चली जा रही है। जिस कार्यसे जड़-जगतमें जड़ता उत्पन्न हो, वही हमारे लिए प्रयोजनीय कार्य है। परिवर्तित रुचियुक्त जगतमें जीव विमुखताकी ओर जानेके लिए अधिकतम चेष्टा करते हैं।

निर्गुण वस्तु भगवान स्वेच्छापूर्वक ही इस जगतमें आते हैं; वे अवतीर्ण होते हैं। ऐसे कार्य द्वारा निर्गुण वस्तुके निर्गुणत्वकी किसी प्रकारसे कोई हानि नहीं होती। मेरे तरह गुणजात जड़पिण्ड जो बातें कहते हैं, वे सभी गुणजात हैं। किन्तु श्रौत-पथके आधारपर जो सभी बातें हमारे कानोंमें प्रविष्ट होती हैं, उनमें ऐसी अलौकिकी शक्ति है कि वे कानमें प्रविष्ट होनेपर मनुष्यकी चेतनताको प्रस्फुटित करा देती हैं। जो शब्द विरजा-ब्रह्मलोक भेद कर वैकुण्ठ पहुँच सकता है, जो शब्द वैकुण्ठसे ब्रह्मलोक-विरजा भेद कर चतुर्दश भुवनमें अवतीर्ण होता है, वही शब्द हमें वैकुण्ठमें ले जाता है। जो शब्द जड़ाकाशसे उत्पन्न होकर कुछ समय जड़ाकाशमें रहकर जड़ाकाशमें ही लय प्राप्त होता है, वही शब्द हमें नरकके रास्तेमें ले जाता है। ऐसे शब्द हमारी इन्द्रिय-तृप्तिके लिए ही हैं—हमें मूर्ख बनानेके लिए जगतमें प्रचारित हुए हैं, भूताकाशमें व्याप्त हैं। खाना, पीना, रहना, मिथुन-धर्म करना, मर जाना आदि इन जागतिक शब्दके उद्दिष्ट विषय हैं। इन शब्दोंसे जड़वस्तुमें हम लोग और भी ज्यादा जड़ित हो पड़ते हैं। श्रीश्रीचैतन्य-महाप्रभु उपस्थित स्थानके निकटवर्ती किसी स्थानमें अवतीर्ण हुए थे—जगतमें परव्योमके शब्दका प्रचार और विस्तार करनेके लिए।

किन्तु उन परम करुणामय प्रभुकी कृपा-पूर्ण बातें अभी भी जागतिक लोगोंके कानोंमें प्रवेश नहीं करतीं। वे लोग योषित्-सङ्ग करते हैं या योषित् सङ्गियोंका सङ्ग करते हैं और उसीमें भूले हुए से पड़े रहते हैं। इसलिए उन लोगोंका कल्याण नहीं होता—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।
सन्दर्शनं विषयिणामथ योषिताञ्च
हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

इस भवसागरको जो व्यक्ति सम्पूर्ण रूपसे उत्तीर्ण होना चाहते हैं, ऐसे भगवद् भजनोन्मुख निष्किञ्चन व्यक्तियोंके लिए विषयी लोगोंका तथा स्त्री लोगोंका दर्शन विषभक्षण करनेकी अपेक्षा भी अत्यन्त अमङ्गलकर है। सृष्टिके प्रारम्भमें योषित् और योषित्के भोक्ता (स्त्री एवं पुरुष) इस जगतमें आविर्भूत हुये हैं। उन लोगोंके ही अधस्तन रूप ये सभी योषित्-सङ्गी समाजके व्यक्तियोंके बढ़नेसे जगतका इतना अमङ्गल होता है। महाप्रभुके भक्त लोग योषित्सङ्गी नहीं हैं—

महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान।
जाहा देखि प्रीत हन गौर-भगवान्॥

महाप्रभु बगीचेके माली होनेके कारण वे हमें भोगरूपी फूलोंका गुलदस्ता प्रदान करेंगे—ऐसा चाहना भोगबुद्धि मात्र है। भगवान् सर्वेश्वर वस्तु हैं। जो लोग इतर व्योमके शब्दोंकी बहादुरीके आधारपर 'भवानीभर्त्ता' होनेकी दुर्बुद्धि पोषण करते हैं, उन लोगोंका 'विरुद्धमतिकृतदोष' महाप्रभुजीने दिखलाया है। जो सभी व्यक्ति सौभाग्यवान हैं, वे लोग ही इन सभी बातोंका तात्पर्य समझ सकते हैं। जो लोग भाग्यहीन हैं, वे लोग सोचते हैं कि हम लोग सुन रहे हैं; किन्तु वास्तवमें उन लोगोंका सुनना नहीं हुआ, वे लोग केवल वञ्चित हुए। यदि हम लोग अपने सौभाग्यके कारण भजनीय वस्तुकी सेवा करनेके लिए प्रवृत्त हों, तब ही हम लोगोंके कानमें हरिकथा प्रवेश करेगी—हम लोग सुन सकेंगे—समझ सकेंगे। जिसकी जो अवस्था है, उससे उन्नत अवस्थामें जाना होगा—अच्छा बनना पड़ेगा—केवल शरीर पर विष्टा पोथ लेनेसे यमराज नहीं छोड़ेंगे। प्रति मुहूर्त्त ही हमें दैवी माया भगवद्विमुखताके राज्यमें प्रवेश कराती रहती है। जिस मुहूर्त्तमें हमारा कोई रक्षक नहीं रहेगा, उसी मुहूर्त्तमें हमारी सभी पारिपार्श्विक वस्तुएँ शत्रु होकर हमारे ऊपर आक्रमण करेंगी। जिस समय हम लोग यथार्थ साधुके निकट हरिकथा नहीं सुनेंगे—निष्कपट साधुओंकी सेवा न करेंगे, वह अवसर पाते ही माया हमपर आक्रमण करेगी।

जो लोग पशुओंके स्वभाव और मनुष्योंके स्वभावको एक समान समझते हैं, चेतनताकी वृत्तिको खो बैठे हैं, वे लोग हरिकथा सुन न सकेंगे। अतएव हम लोगोंका कर्त्तव्य है—जहाँ हरिकथा हो रही हो, यथार्थमें चेतनमुखसे चेतनमयी हरिकथा प्रकाशित हो रही हो, वहाँ जाकर अपना मन लगाना। जगतमें अनुस्वार और विसर्ग लेकर मस्तिष्क और जिह्वाको कसरत कराने वाले व्यक्ति लाख लाख हैं। वे लोग परव्योमसे आविर्भूत चेतनमय शब्दका तात्पर्य समझ नहीं सकते, वे लोग हरिकथा बोल नहीं सकते, उनकी बातें ग्रामोफोनके गानकी तरह है। वे लोग विषयोंमें ही डूब मरेंगे—सत्यकी उपलब्धि नहीं कर सकेंगे। बुद्धिमान् व्यक्ति सर्वदा ही अपने वास्तविक मंगलकी चिन्ता करते हैं और ऐसी चेष्टा करते हैं जिससे उस मंगलसे कदापि

वञ्चित न होना पड़े । जड़जगतकी जो सभी वस्तुएँ हैं, वे उन लोगोंके विपरीत धर्मको उदय करायेंगी; पाण्डित्य मूर्खता लायेगा, सुख दुःखको उत्पन्न करेगा—आदि आदि ।

किसी व्यक्तिमें पहले सत् उद्देश्य था, किन्तु कुछ दिनोंके पीछे उसमें असद् उद्देश्य क्यों उदय हुआ ? उसका कारण यही है कि उसने निर्गुण हरिकथा सुननेका समय नहीं दिया, या सुननेकी छलना कर अन्यमनस्क हो गया है, उसने आपात् प्रयोजनीय सुखकी चेष्टासे विरत होनेका प्रयास बिलकुल नहीं किया, असत् व्यक्तियोंका परामर्श ग्रहण कर इन्द्रियज सुखके लिए व्यस्त हो पड़ा है । भगवानके पादपद्मोंका आश्रय ग्रहण करनेसे लिखना-पढ़ना सीखें या न सीखें, बल रहें या न रहें, कोई असुविधा नहीं है । जीव भी निर्गुण वस्तु है । जब जीव अपनेको गुणबद्ध वस्तु समझता है, तभी सगुण (प्राकृत गुण-युक्त) जगतके प्रति उसकी आसक्ति होती है।

भगवानके नित्य पार्षद लोग मनुष्योंका कल्याण करनेके लिए इस जगतमें आगमन करते हैं । उन लोगोंका जगतमें कोई कर्त्तव्य नहीं है—इस जगतमें आनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । जीवोंकी विपरीत रुचिका परिवर्त्तन करना ही सबसे बड़े दयालु व्यक्तियोंका एकमात्र कर्त्तव्य है । भूखे को अन्न देना, वस्त्रहीनको वस्त्र देना आदि व्यर्थ परिश्रम हो जाते हैं, यदि मूलवस्तु भगवानके साथ कोई सम्बन्ध न रहे ।

माया अपना लोभ दिखलाकर जीवोंको सब समय भोगराज्यकी ओर आकर्षित कर रही है, उन्हें सब समय कष्ट दे रही है । स्त्री हाथीके द्वारा पुरुष हाथीको वश कर बाँध देनेकी तरह माया योषित् सङ्गादिका लोभ दिखलाकर जीवको संसारमें आबद्ध करती है । असद्वस्तुको सत्य समझकर उनसे उपकार होगा, ऐसा सोचकर जीव उस ओर दौड़ पड़ते हैं । माया मनुष्योंकी वञ्चना करनेके लिए सुखका लोभ दिखलाती है । जगतमें जो सभी वस्तुएँ मेरी भोगमयी आँखोंके सामने अच्छी प्रतीत होती हैं, वे सभी जालस्वरूप हैं । जो भोगी होगा, वह अवश्य ही वञ्चित होगा, परेशान होगा । खा-पीकर नरकमें जायेंगे, ऐसी बुद्धि विचारसम्पन्न मनुष्य-जातिको ग्रास की हुई है; इसकी अपेक्षा और लज्जाकी बात क्या है ?

इस बुद्धिसे बचनेके लिए Sugar coating (चीनीका आवरण) देकर quinine खानेकी तरह श्रीचैतन्य महाप्रभुने व्यवस्था की है । इतर व्योम (इस जगत) के असद् शब्द मनुष्योंको इतर विषयोंकी ओर आकर्षण करते हैं—ये शब्द ही सब प्रकारके गड़बड़के मूल कारण हैं । मनुष्य इन शब्दों द्वारा आकृष्ट होकर मृगका मायावी व्याधके बाणोंसे विद्ध होनेकी तरह बन्धनमें पड़ जाता हैं । अतएव परम दयालु श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने हरिकथाके साथ ताल-मान-लय आदि संयोग कर चीनीका परदा देकर

quinine खिलानेकी व्यवस्था की है। जड़ीय भावयुक्त नृत्यगीतवाद्य—जो पापके आकर-स्थान हैं, महापापियों द्वारा आदरणीय है, उनको अप्राकृत कामदेव भगवान् श्रीकृष्ण की सेवामें नियुक्त न करनेसे विष अवश्य ही उगलेंगे। जो सभी साधु लोग जीवोंको विपथगामी नहीं होने देते, उन सभी साधुओं का आदर नहीं है। हरिकथाके नामसे वर्त-कालमें जो सभी व्यक्ति जनसाधारणको विपथगामी कराते हैं, उन लोगोंके निकट वञ्चित होना ही आजकलका युगधर्म हो पड़ा है। जो लोग यथार्थ साधु हैं, कपट साधुओंका भण्डाभोड़ करना चाहते हैं, ऐसे लोगोंको असाधु लोग, कपटी लोग तथा चोर लोग उल्टे 'चोर', 'असाधु' 'भण्ड' कहकर लोगोंको धोखा देकर खुद बचनेकी ताकमें रहते हैं। माया मनुष्यको निष्कपट नहीं होने देती; कितने प्रकारसे ही यथार्थ साधुके पास जानेसे रोकनेके लिए चेष्टा करती है।

कुलिया (वर्तमान नवद्वीप) में रास-लीलाका गान हो रहा है। कितने-कितने श्रोता हैं! कीर्तनीया लोग कितने प्रकारसे ताल-मान आदि सृष्टि कर कसरत कर रहे रहे हैं! 'विद्यासुन्दर' के गान सुननेसे नरकमें जाना होगा; उसकी तरह राइकानुका गान अनधिकार रूपसे सुननेपर भी ऐसा ही होगा। इसके द्वारा अद्वितीय कामदेव श्रीकृष्णका प्रीतिविधान नहीं होता; वहाँ केवल अपने आपको ही कामदेव साजनेकी लालसा वर्तमान है। राइ-कानुका गान इनके मुखसे निकल नहीं सकता। कृमियाँ जिस प्रकार मनुष्योंके सब रक्तको खा लेती हैं, उन्हें पुष्ट होने नहीं देतीं, उसी प्रकार इन लोगोंकी सभी चेष्टाएँ हमें अमंगलके रास्तेमें ले जानेके लिए सोपान स्वरूप हैं। जिन लोगोंने अपनी इन्द्रियोंपर जय नहीं पाया है, वे लोग क्या राइकानु (राधाकृष्ण) गान गाने या सुनानेका सामर्थ्य रखते हैं? महादेव शिवके लिए जो व्यवस्था है, वह व्यवस्था क्या मेरे जैसे क्षुद्र प्राणीके लिए उपयुक्त है? इतने व्यक्ति जो कालकूट विष पान करनेके लिए दौड़ रहे हैं, 'अमृत' समझकर विषका बर्तन ग्रहण करनेके लिए जब इतने आतुर हैं, हैं, तब क्या आचार्योंकी वाणी एकबार भी इन लोगोंके कानोंमें नहीं प्रवेश करेगी? सद्वैद्य रोगियोंके मंगलके लिए बिना किसी मूल्य लिए कठोर चेष्टा कर रहे हैं और रोगी लोग उस वैद्यको विनष्ट करनेके लिए कितनी चेष्टा कर रहे हैं! अपने पाँवमें आप ही कुल्हाड़ा मार रहे हैं! जिस शाखा पर बैठे हुए हैं, उसीको काट रहे हैं!

कपटता और दुर्बलता दोनों ही परस्पर भिन्न और स्वतन्त्र प्रवृत्तियाँ हैं। कपटता रहित व्यक्तिका ही कल्याण होता है। आचार्यको ठगनेकी चेष्टा—वैद्यकी आँखोंमें धूलि झोंकनेकी चेष्टा—अपनी असत् प्रवृत्ति रूप कालसर्पको कपटतारूप कोठरीमें छिपा-कर उसे दूध-फल देकर पोषण करनेकी

चेष्टा--दूसरोंको न जानने देना—दूसरे लोगोंके निकट 'साधु' कहलवाकर प्रतिष्ठा लेनेकी चेष्टा—ये सभी बातें केवल दुर्बलताएँ मात्र ही नहीं हैं, बल्कि भयङ्कर कपटताएँ हैं। ऐसी बुद्धियुक्त व्यक्तियोंका कदापि मंगल न होगा। जिन लोगोंने मंगलके पथको पहलेसे ही रोक रखा है, उन लोगोंका मंगल न होगा। साधु लोगोंके प्रकृष्ट सङ्गसे, निष्कपट होनेकी प्रवृत्तिसे विनीत होकर साधुओंके मुख-विगलित हरिकथा सुनते-सुनते क्रमशः मंगल होता है। यदि हम लोग दूसरोंको दिखलानेके लिए साधु सङ्ग करें, तो हमारी नारकीय-प्रवृत्ति दिनों दिन बढ़ती रहेगी। श्रीगौरसुन्दरने जो आदर्श दिखलाया है, उसमें कपटताका लेशमात्र भी नहीं है। छोटे हरिदासके आदर्शमें कपटता था। मेरे समान यदि कोई साधुका वेष धारण कर दूसरे कार्यमें व्यस्त हो पड़े, 'त्रिदण्ड' लेकर रावणकी तरह सीताहरणकी दुर्बुद्धि पोषण करे, तो वह अपने गलेमें आप ही चाकू देनेकी तरह है--हरि भजनके नामसे और विपरीत करना हुआ। यदि लाखों जन्मोंतक हमारे भीतर दुर्बलता रहे, तो कोई विशेष हानि नहीं है; किन्तु एकबार भी यदि कपटताका आश्रय लें, साधुका वेष और साधुका नाम लेकर 'सीताहरण' चेष्टा करें, तो असुविधारूपी सर्पिणीको चिर दिनके लिए गलेमें लपेटना हुआ। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग रूप लाखों योनियोंमें भ्रमण करना अच्छा है, किन्तु कपटताका आश्रय करना कदापि उचित नहीं है। कपटी लोगोंपर श्रीश्रीगौरसुन्दरकी कृपा नहीं होती---

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम्।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये॥

(भा० २।७।४२)

भगवान् अनन्तदेव जिनके प्रति कृपा करते हैं, वे यदि कपटता रहित होकर काय-मनोवाक्यसे उनके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत होते हैं, तो वे लोग अलौकिकी दुस्तरा मायाको उत्तीर्ण हो सकते हैं। इन सभी कुत्ते और सियार द्वारा भक्ष्य देहके प्रति 'मैं' और 'मेरा' अभिमान शरणागत भक्तोंका नहीं होता।

'मैं कौन हूँ'--यह बात आलोचना नहीं करनेसे मेरी दुर्गति होगी--माया मुझे नाना प्रकारके प्रलोभनोंमें डूबा देगी। जिस समय हम लोग थोड़ा भी असावधान हो जाय, उस समय ही माया-राक्षसी हमारा गला दबाकर हमें ग्रास कर लेती है। पारमहंसी कथा निरन्तर श्रवण न करनेसे इस दुस्तरा मायाके कवलसे उद्धार पानेका कोई उपाय नहीं है। यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं--

तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम्।

निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-
जुंष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥
(भा० ६ । ३ । २८)

मुकुन्दपादारविन्दका मकरन्दरस, जो असत्सङ्गवर्जित है तथा जिसका निष्किञ्चन परमहंस लोग नित्य निरन्तर पान करते रहते हैं, उससे विमुख होकर जो सभी असद्व्यक्ति नरकके द्वारस्वरूप गृहके प्रति एकान्त आसक्त हैं, हे दूतगण ! उन्हें ही तुम लोग मेरे पास ले आना ।

आप लोग सभी मिलकर आशीर्वाद करें जिससे कपटता-राक्षसी मुझे ग्रास न करें। क्योंकि मङ्गलाकांक्षी वैष्णव लोगोंका कहना है कि सरलताका दूसरा नाम ही वैष्णवता है। परमहंस वैष्णवोंके सेवक लोग सरल होते हैं। अतएव वे लोग ही सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण हैं। अतएव कहा गया है--

'आर्जवं ब्राह्मणे साक्षात् शूद्रेऽनार्जव-लक्षणम् ।'

मैं किसी व्यक्ति विशेषको कटाक्ष कर नहीं कह रहा हूँ; जिससे मैं यथार्थ रूपमें सरल होकर निर्गुण भगवान्‌की सेवा कर सकूँ, ऐसा आशीर्वाद सभी मिलकर करें। मैं बहुत विपन्न हूँ--मेरे समान दुःखी और कोई नहीं है; आप लोग मेरी रक्षा करें--सभी लोगोंके चरणोंमें मेरा यही निवेदन है कि आप लोग मेरा मङ्गल-विधान करें। आप लोग ऐसा करनेसे परम लाभवान् होंगे। जो व्यक्ति मेरी रक्षा करेगा, भगवान् निश्चय ही उसकी रक्षा करेंगे। मैं हरिकथा नहीं जानता--हरिकथा सुननेकी मेरी अत्यन्त तीव्र उत्कण्ठा रहती है। किन्तु प्रत्येक पद-पदमें कुकर्म, विकर्म, जागतिक सत्कर्म आदि मुझे असत्, बाहरी विषयोंकी ओर आकर्षण कर कपटता सिखलाते हैं। आप लोग दया कर मेरा मंगल विधान करें--यही मेरी आप लोगोंके श्रीचरणोंमें सकातर प्रार्थना है।

--जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(सम्प्रदाय)

१—सत्सम्प्रदाय प्रणाली क्या सनातन है अथवा अर्वाचीन ?

"सम्प्रदाय-प्रणालीकी व्यवस्था नितान्त आवश्यक है। अतएव अनादिकालसे शुद्ध साधु लोगोंमें सत्सम्प्रदाय-प्रणाली चली आ रही है।"

—जै० ध० १३वाँ अ०

२—किन लोगोंने विशुद्ध मत स्वीकार किया है ?

"जिन लोगोंने ब्रह्मासे गुरु-परम्परा क्रमसे उस वेदसंज्ञिता वाणीके यथार्थ अनुव्याख्यानादि प्राप्त किया है, उन लोगोंने ही विशुद्ध-मत स्वीकार किया है। दूसरे सभी लोगोंने मतभेद क्रमसे नाना प्रकारके पाषण्ड-मतका दासत्व स्वीकार कर लिया है।"

—श्रीम० शि० २य प०

३—श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्तोंका गुरु-प्रणाली क्या है ? कौन उनके प्रधान पत्रु हैं ?

"श्री ब्रह्म-सम्प्रदाय ही श्रीकृष्ण-चैतन्य-दास लोगोंकी गुरु-प्रणाली है। श्रीकविकर्णपूर गोस्वामीने इसीके अनुसार उनके रचित ग्रन्थ 'श्रीगौरगणोद्देश-दीपिका' में दृढ़कर गुरु-प्रणालीका क्रम लिखा है। वेदान्तसूत्र-भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने भी उसी प्रणाली-को स्थिर रखा है। जो व्यक्ति इस प्रणालीको अस्वीकार करते हैं, वे लोग श्रीकृष्णचैतन्य-चरणानुचर व्यक्तियोंके प्रधान शत्रु हैं।"

श्रीम० शि० २य प०

४—कलिके गुप्तचर कौन हैं ?

"जो व्यक्ति श्रीकृष्णचैतन्य-सम्प्रदाय स्वीकार करते हुए गुप्तरूपसे गुरु-परम्परासिद्ध-प्रणाली स्वीकार नहीं करते, वे कलिके गुप्तचर हैं।"

—श्री० म० शि० २य प०

५—भविष्यमें भक्ति-तत्त्वमें एकमात्र किस सात्वत-सम्प्रदायका अस्तित्व रहेगा ?

"थोड़ेसे दिनोंमें भक्तितत्वका एकमात्र सम्प्रदाय रहेगा। वह है श्री ब्रह्म-सम्प्रदाय। और सभी सम्प्रदाय ही इस ब्रह्म-सम्प्रदायमें मिल जायेंगे।"

—श्रीम० शि० २य प०

६—वैष्णव-सम्प्रदायोंके मतोंमें पार्थक्य क्यों है ?

"सभी वैष्णव-सम्प्रदायके मत एक ही हैं। केवल किसी-किसी विषयमें थोड़ा-सा मतभेद

है। सभी वैष्णव लोग ही जीवको तत्त्वतः ईश्वरसे भिन्न तत्त्व मानते हैं। सभी वैष्णवोंने ही भक्तिमार्गको स्वीकार किया है।"

—श्री प्रे० प्र० ६ठा प०

७—सम्प्रदाय-प्रणाली क्या जीवोंके लिए नितान्त हितकारी है ?

"सम्प्रदाय-प्रणाली जीवोंके लिए परम कल्याणकारी है । सम्प्रदायमें प्रवेश करनेसे साधु-पदाश्रय, सद्धर्म-शिक्षा, धर्मालोचना और क्रमवैराग्य अनायास ही प्राप्त होगा। जब तक असम्प्रदाय बुद्धि प्रबल रहेगी, तब तक जीवन के अन्त तक भी तर्क-वितर्क करनेसे भी आत्म-प्रसाद प्राप्त न होगा। सम्प्रदायके कोई-कोई व्यक्ति स्वार्थपर होकर कदाचार करते हैं, अतएव सम्प्रदाय-प्रणाली ही निन्दनीय है—ऐसा विचार असार लोगोंका ही कार्य है। सम्प्रदायमें प्रवेश कर सम्प्रदायको पवित्र करनेकी चेष्टा ही बुद्धिमान लोगोंका कर्त्तव्य है। बाजारमें सब समय अच्छे द्रव्य पाये नहीं जाते एवं कई प्रकारसे कृत्रिमता भी चलती है । अतएव बाजारको संस्कार करनेकी आवश्यकता है। किन्तु इन सभी कारणोंसे जो व्यक्ति बाजार-प्रणाली उठा देनेकी चेष्टा करते हैं, उनकी किसी प्रकारसे प्रशंसा नहीं की जा सकती। सम्प्रदायके प्रथम आचार्य लोगोंने जगन्मङ्गलविधान करनेके लिए ही सम्प्रदायका निर्माण किया है।"

—'सम्प्रदाय-प्रणाली' स० तो० ४।४

८—सम्प्रदाय-विरुद्ध मत किस समयसे प्रचलित हुआ है ?

"इतिहास आलोचना करनेसे यह जाना जा सकता है कि इस पवित्र भारतभूमिमें किसी समय भी सम्प्रदाय-विरुद्ध मत नहीं था। पाश्चात्य पण्डितोंके साथ जबसे भारतवासियों का सङ्ग हुआ है, तबसे ही कोई-न-कोई व्यक्ति सम्प्रदाय-विरोधी हो पड़े हैं।"

—'सम्प्रदाय-प्रणाली' स० तो० ४।४

९—सम्प्रदाय-प्रणालीमें दोष अधिक है या गुण अधिक है ?

"निरपेक्ष होकर विचार करनेपर संप्रदाय-प्रणालीमें दोषकी अपेक्षा बहुत अधिक गुण है। जिसमें अधिकांश गुण हैं, उसमें कुछ-कुछ दोष रहनेपर भी पण्डितोंके लिए वह आदरणीय वस्तु है।"

—'सम्प्रदाय-प्रणाली' स० तो० ४।४

१०—असाम्प्रदायिक व्यक्ति क्या स्व-कपोल-कल्पित असत् साम्प्रदायिक नहीं हैं ?

"सम्प्रदायके विरोधी व्यक्ति सम्प्रदायके विरुद्ध एकमत लेकर अपने आपको 'असम्प्रदायी' मानते हैं । अतएव वे लोग उस मतवादको लेकर एक नये सम्प्रदायकी सृष्टि करते हैं।"

—'सम्प्रदाय-प्रणाली' स० तो० ४।४

११—वैष्णव-धर्म नित्यसिद्ध है, इसका क्या प्रमाण है ?

"वैष्णव-धर्म जीवोंके प्राकट्यके साथ-साथ उदित हुआ है । ब्रह्माजी प्रथम वैष्णव हैं। श्रीमन्महादेव भी वैष्णव हैं। आदि प्रजापति लोग सभी ही वैष्णव हैं। ब्रह्माके मानस पुत्र श्रीनारदजी भी वैष्णव हैं । जो सभी व्यक्ति विशेष यशस्वी हैं, उनका नाम ही इतिहासमें उल्लेख किया गया है। वस्तुतः प्रह्लाद और ध्रुवके समय कितने ही सैकड़ों वैष्णव थे, कहा नहीं जा सकता। उनके पश्चात् सूर्य-चन्द्र वंशीय राजा लोग और अच्छे-अच्छे मुनि-ऋषि लोग सभी ही विष्णुपरायण थे। सत्य, त्रेता, द्वापर—इन तीनों युगोंमें ही ऐसा उल्लेख है । कलिकालमें दाक्षिणात्य प्रदेशमें श्रीरामानुज, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी और श्रीनिम्बादित्यस्वामी ने कितने ही सहस्र-सहस्र व्यक्तियों को विशुद्ध वैष्णव-धर्ममें प्रवेश कराया है।"

— जै० ध० १०म अ०

१२—वैष्णव-धर्मके परिस्फुटावस्थाका इतिहास क्या है ?

"वैष्णव-धर्म—पद्मपुष्पकी तरह कालके साथ-साथ वह क्रमशः प्रस्फुटित हुआ है। पहले—कलिका। पश्चात् और थोड़े विकसित रूपसे लक्षित हुआ । क्रमशः पूर्ण विकसित-भावप्राप्त पुष्पकी तरह प्रकाशित हुआ है। ब्रह्माजीके समयमें श्रीमद्भागवतका चतुः श्लोकी सम्मत भगवद् ज्ञान, विज्ञान, भक्ति-साधन और प्रेम केवल अंकुररूपसे जीव हृदय-में प्रकाश पा रहा था । प्रह्लादादिके समयमें कलिका-आकार देख गया। क्रमशः बादरायण ऋषिके समयमें कलिकाएँ विकसित होना आरम्भ होकर वैष्णव-धर्मके आचार्य लोगोंके समय पुष्पाकारमें देखी गयीं। श्रीमन्महाप्रभुके प्रकट होनेपर प्रेमपुष्प सम्पूर्ण विकसित होकर जगत् निवासियोंकी हृद-नासिकाको परम रमणीय सौरभ प्रदान करने लगा। श्रीमन्महा-प्रभुने श्रीवैष्णव-धर्मके परम निगूढ़ भावरूप नामप्रेम जीवोंके भाग्यके लिए प्रकाश किया है।"

१३—परमार्थ-तत्त्व किस प्रकार क्रमशः स्पष्टीभूत और परिपक्व हुआ है ?

"परमार्थ-तत्त्व आदिकालसे अब तक क्रमशः स्पष्टीभूत, सरल और संक्षेप हो गया है। देश-काल जनित मलिनता जितना ही उससे दूरीभूत हुआ है, उतना ही उसका सौन्दर्य देदीप्यमान होकर हमारे सम्मुख प्रकट हो रहा है । सरस्वती-तीरमें ब्रह्मावर्त्तके कुशमय भूमिमें इस तत्त्वका जन्म हुआ है। क्रमशः प्रबल होकर परमार्थ-तत्त्वने बदरिका-श्रमके तुषारावृत भूमिमें बाल्य लीला की है । गोमती-तीरमें नैमिषारण्य-क्षेत्रमें उसका पौगण्डकाल अतिवाहित हुआ । द्राविड़-देशमें कावेरी-श्रोतस्वतीके रमणीय-कुलमें उसके यौवन कार्य सभी हुए । जगत्-पवित्रकारिणी जाह्नवी-तीरमें नवद्वीप नगरमें इस धर्मकी परिपक्वावस्था देखी जाती है।"

—उपक्रमणिका' कृ० सं०

१४—सत्सम्प्रदाय—विशेषका आनुगत्य कैसे सूचित होता है ?

"शङ्करके तर्कस्रोतमें भक्तिकुसुम भक्तचित्त-स्रोतस्वतीमें भासमान होकर अस्थिर हुई थीं। किन्तु रामानुजाचार्यजीने शङ्कर-प्रदत्त विचार-बलसे और भगवान्‌की कृपासे शारीरक-सूत्रका दूसरा भाष्य रचना कर पुनः वैष्णव-तत्त्वका बल बढ़ाया था । अत्यन्त थोड़े समयमें ही विष्णुस्वामी, निम्बादित्य और मध्वाचार्य आदिने भी वैष्णव-मतका कुछ-कुछ भिन्न आकार स्थापन कर अपने-अपने मतानुसार भाष्य रचना की। किन्तु सभी ही शङ्करके अनुकारक हैं। शङ्कराचार्यकी तरह सभीने ही एक-एक गीता-भाष्य, सहस्रनाम-भाष्य और उपनिषद्-भाष्य रचना की है। इस प्रकार उस समय लोगोंके मनमें एक मत उदय हुआ कि जिस किसी सम्प्रदायको स्थिर करनेके लिए ऊपर कहे गये चार-ग्रन्थोंका भाष्य रहना आवश्यक है। उक्त चार वैष्णव आचार्योंसे श्रीवैष्णव आदि चार-सम्प्रदाय चले आ रहे हैं।"

—'उपक्रमणिका' कृ० सं

१५—परमार्थ-तत्त्वकी उन्नतिकी पराकाष्ठा कहाँ हुआ है ?

"समस्त जगतके इतिहास आलोचना करनेपर भी श्रीनवद्वीपमें ही परमार्थ-तत्त्वकी चरम उन्नति देखी जाती है । परब्रह्म जीवके एकान्त प्रेमके आस्पद हैं। अनुरागपूर्वक उनका भजन न करनेसे वे कदापि जीवोंके लिए सहज-प्राप्य नहीं हो सकते । सारे जगतमें जीवका जो स्नेह है, उसे परित्यागपूर्वक उनकी भावना करनेपर भी वे अनायास हो पाये नहीं जा सकते।"

—'उपक्रमणिका' कृ० सं०

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(श्रीभक्तिसन्दर्भ—६)

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥

(भा० १ । ५ । १२)

जब उपाधिरहित निर्मल ज्ञान भी भगवद्-भक्तिरहित होनेपर अपवर्ग प्रदान करनेमें असमर्थ है, तब फलकाल और साधनकालमें अत्यन्त क्लेशकर कर्म या निष्काम कर्म यदि वासुदेवको अर्पित न किया जाय, तो वह सम्पूर्णरूपसे निरर्थक होगा, इसमें सन्देह ही क्या है ? इस प्रकारके ज्ञान और कर्ममें यदि भक्तिका संसर्ग और भक्तिका आनुगत्य न हो, तो दोनों ही अकर्मण्य हैं—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे—
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥

(भा० १ । ५ । १७)

निन्दनीय काम्य कर्मादिमें अनुराग होना नितान्त अन्याय कार्य है । किन्तु नित्य-नैमित्तिकादि कर्मका भी अनादर कर एकमात्र हरिभजन ही कर्त्तव्य है, यह बात इस श्लोक द्वारा श्रीनारद गोस्वामी श्रीव्यासदेवजीको कह रहे हैं । नित्य नैमित्तिक वर्णाश्रमादि स्वधर्म त्याग कर हरिभजन करते करते यदि भजनमें परिपक्व होनेके पहले ही किसी व्यक्तिका पतन हो जाय, तो क्या उसका अमङ्गल होता है ? नहीं होता । और स्वधर्म में रहकर ऐसा धर्माचरण कर हरिभजन न हो, तो उससे क्या लाभ है ? अर्थात् कोई फल पाया नहीं जाता ।

यदि भजन करते करते फलोदय दीर्घ-कालमें हो तो कोई चिन्ताकी बात नहीं है । किन्तु यदि अपक्व अवस्थामें मृत्यु या भजन-विच्युति हो, तो निजधर्म परित्याग करनेका क्या दोष लगेगा ? इस आशङ्काको दूर करनेके लिए कह रहे हैं—यदि भजनमें पारङ्गत न होकर भक्तिसे पतन हो, या किसी प्रकार विच्युति अथवा मृत्यु हो, तो भक्तिरसपरायण व्यक्तिके कर्ममें अनधिकार हेतु अनर्थकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए । जिस किसी अवस्थामें या नीच योनियोंमें भी जन्म क्यों न हो, भक्तिरसिक पुरुषका अमङ्गल नहीं होता । किन्तु जो व्यक्ति कदापि भजन ही नहीं करते, केवल संसार-धर्मका पालन करनेमें ही व्यस्त हैं, उनके वैसे कार्य द्वारा क्या फल प्राप्त होगा ? ऐसे गृहासक्त व्यक्ति भगवत्तत्व आलोचना नहीं करते—

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ।
अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥
(भा० २ । १ । २)

गृहासक्त व्यक्ति लोग मैं कौन हूँ ? हमारा क्या कर्तव्य है ? परिणाममें क्या गति होगी ? इन सब प्रश्नों पर आलोचना नहीं करते । क्योंकि संसार कर्ममें हजारों श्रोतव्य विषय हैं । उनका दिन सांसारिक कर्ममें और रात निद्रा या असत् कर्मोंकी चेष्टामें व्यतीत होता है । जीवमात्रका वास्तविक कर्त्तव्य क्या है, इस विषयमें कहा गया है—

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवानीश्वरो हरिः ।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम् ।
(भा० २ । १ । ५)

स्वरूप ज्ञानके अभावमें जीव अपनेको भोक्ता अभिमान कर पुनः पुनः माया द्वारा पिसते हैं । जब स्वरूप ज्ञान हो, तब अपनेको दास और भगवान्‌को प्रभुके रूपमें ज्ञान होता है । भगवत् पादपद्मोंमें आश्रय ग्रहण न करनेसे जीव प्रधान भयस्वरूप जन्म-मृत्युके चक्रसे उद्धार नहीं पाते । इसलिए अभय चाहने वाले व्यक्तियोंके लिए सर्वात्मा अर्थात् सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्यके आधार, सर्वाश्रय हरिकी कथा श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करनी चाहिए ।

श्रीहरिसे विमुख होनेपर जीव द्वितीयाभिनिवेश द्वारा भगवद्विमुखतारूप भयके अधीन हो जाते हैं । अव्यभिचारिणी केवला भक्ति उन्हें नित्य हरिसेवामें प्रतिष्ठित कराती है । शुद्ध जीवात्माकी नित्यवृत्ति भक्ति आवृत और विक्षिप्त होनेपर अनात्म-अनुभूतिके कारण भीतिका उदय होता है । कृष्णविमुख जीवको ही भय है, कृष्ण सेवोन्मुख मुक्तसेवककी अभयचरण सेवा ही सम्पूर्ण मुक्ति है । कर्मफलभोग और त्याग—इन दोनों भुक्ति और मुक्ति पिपासासे मुक्त न होने तक अभयपदसेवारूप भक्तिमें अधिकार नहीं होता । जब तक भगवान्‌को अभयपद ज्ञान नहीं होता, तब तक मायिक भीतिप्रद वस्तुके भयमें व्यस्त रहना पड़ता है ।

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह ।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥
(भा० २ । २ । ३३)

संसारमें विचरणशील व्यक्तिके लिए कई मार्ग हैं । किन्तु भगवत् सन्तोषमूलक भक्तियोग ही उपादेय और सर्वश्रेष्ठ है । जिस अनुष्ठान द्वारा भक्तियोगका उदय हो, उसको छोड़कर सुखजनक निर्विघ्न दूसरा पन्था नहीं है । वह भक्तियोग ही सर्ववेदसिद्ध है, यह बात कही गई है—

भगवान् ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।
तदध्यवस्यत् कूटस्थो रतिरात्मन् यतो भवेत् ॥

ब्रह्माजीने वेद शास्त्रकी नाना प्रकारसे आलोचना कर अविमिश्रा भक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ कहकर निश्चय किया था । वेदके कर्मकाण्डमें अध्वर्यु, होता और उद्गाताको छोड़कर चौथे व्यक्ति ब्रह्मा कर्मयज्ञके प्रधान अनुष्ठाता हैं । यज्ञेश्वर ही यजनकारीके

एकमात्र उपास्य वस्तु हैं। उससे कर्मकाण्डका आखिरी फलरूप भगवत् उपासना या भक्ति ही निश्चित होती है। ज्ञानकाण्डमें आरोहवाद अवलम्बन करने पर कल्पित परमपदकी प्राप्तिके पश्चात् शीघ्र ही अधःपतन होता है। इसलिए ब्रह्माजीके "ज्ञाने प्रयासमुदपास्य" श्लोकमें ज्ञानमार्गका सम्यक् प्रकारसे परित्याग कर भगवत् प्रपत्तिकी बात ही निर्दिष्ट हुई है। सबसे श्रेष्ठ उत्कृष्ट ज्ञान ही भगवत्-सेवाज्ञान है। जहाँ-जहाँ ब्रह्माजीके हृदयमें सृष्टिकर्त्तृत्व अभिमान प्रबल था, वहाँ वहाँ उन्होंने विचार कर भक्तिका ही श्रेष्ठत्व अनुभव किया है। व्रजमें गोवत्सबालकहरण-कालमें और द्वारकामें अपनेसे अधिक मुखवाले ब्रह्माओंको देखकर उन्हें अपनी छलभक्तिकी अकर्मण्यता उपलब्धि हुई।

अतएव जिस कारणसे भगवानके चरणोंमें रति हो, वह क्या है ? इस प्रश्नके उत्तरमें कह रहे हैं—

तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान् नृणाम्॥
(भा० २।२।३६)

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां
कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम्।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं
व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्॥
(भा० २।२।३७)

अतएव सब समय ही और सर्वत्र ही सर्वात्मा श्रीहरिकी कथा ही श्रवणीय, कीर्त्तनीय और स्मरणीय है। यही मनुष्योंका परम कर्तव्य है।

जो लोग भगवान और भक्तोंके कथामृतको श्रवणपुटके द्वारा ग्रहण कर पान करते हैं, अर्थात् अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रवण करते हैं, उनके विषय विदूषित अन्तःकरण पवित्र होकर भगवानके पादपद्मोंके पास जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। सब प्रकारकी कामनाएँ रहने पर भी हरिभजन ही करना चाहिए—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥
(भा० २।३।१०)

सब प्रकारकी कामनाओंसे युक्त हो, उदार बुद्धि हो, या मोक्षकामी हो, भक्तियोग द्वारा ही परम पुरुष परमेश्वर भगवान्‌का भजन करेंगे। तीव्र भक्तियोगसे संयुक्त होनेपर अन्यान्य कामनाएँ तुच्छ होकर भक्ति ही दृढ़रूपसे अनुष्ठित होगी। अतएव अन्यान्य कामनाएँ नष्ट हो जायेंगी।

भक्तक्षणः क्षणो विष्णोः स्मृतिः सेवा स्ववेश्मनि।
स्वभोग्यस्यार्पणं दानं फलमिन्द्रादि दुर्लभम्॥
(महाभारत)

जब भक्त बुभुक्षु या मुमुक्षुका धर्म अतिक्रम करें, तब ही वे अकाम या ऐकान्त भक्त हैं। ऐसे ऐकान्त भक्त सभी प्रकारके विघ्नोंसे रहित होकर परमपुरुषकी सेवा करते हैं। सेवाप्रवृत्तिके कारण अकाम भक्त उदार हैं। भक्ति दृढ़ होनेपर विघ्न नहीं रहते। भक्तके साथ यापित काल ही विष्णुकाल है। अपने गृहमें विष्णुसेवा ही स्मृति या आचार है और अपना भोग्य-अर्पण ही दान है। ऐसे कर्मके फल इन्द्रादिके लिए भी दुर्लभ हैं।

—त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

नित्यलीला-प्रविष्ट परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामीके नव-निर्मित श्रीसमाधि मन्दिरमें तदीय

श्रीविग्रह-प्रकटोत्सव

श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदायैक संरक्षक, श्रीश्रीमन्महाप्रभुकी परम्परामें नवम आचार्य, मायापुरस्थित आकर-मठराज श्री-चैतन्य मठ एवं तदन्तर्गत और समस्त विश्वमें गौड़ीय मठोंके संस्थापक जगद्गुरु नित्यलीला-प्रविष्ट श्रील सरस्वती गोस्वामी 'श्रील प्रभुपाद' के अन्तरङ्ग प्रिय पार्षद एवं अधस्तनवर तथा उक्त परम्पराके दशम आचार्य, श्रील गौड़ीय वेदान्त समिति नवद्वीप तथा उसके अन्तर्गत भारतव्यापी शाखा-गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्यवर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी गत १९ आश्विन, २०२५ विक्रमी संवत्, कृष्ण प्रतिपदा (६ अक्टूबर १९६८ ई०) तिथिमें श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीकी नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए थे। तबसे उनके विरहातुर अन्तरङ्ग सेवकोंकी तीव्र अभिलाषा हुई कि यथाशीघ्र ही परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुदेवकी समाधि-पीठपर एक भव्य समाधि-मन्दिरका निर्माण हो और उसमें तदीय श्रीविग्रह प्रकटित हों।

परमोदर, आदर्श गुरुमनोऽभिष्टपूरक, श्रीरामपुर (कलकत्ते के समीप) निवासी श्रीपाद हरिपद दासाधिकारी और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती ज्ञानदासुन्दरी देवीने गुरुसेवकोंकी अभिलाषा अवगत होकर श्रीश्रील गुरुदेवके प्रथम विरहोत्सवके दिन ही श्रीसमाधि-स्थ ापर एक भव्य और मनोरम समाधि-मन्दिर निर्माणका संकल्प ग्रहण किया और एक वर्षके अन्दर ही उक्त दम्पतिके सम्पूर्ण खर्चसे बड़ा ही सुन्दर और आकर्षक पञ्च-चूड़ाओंका श्रीसमाधि-मन्दिरका निर्माण हो गया। यह निर्माण कार्य श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सेक्रेटरी त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी देखरेखमें सम्पन्न हुआ है। धार्मिक प्रवर और एकनिष्ठ गुरुसेवक श्रीपाद हरिपद दासाधिकारी तथा उनकी सहधर्मिणी श्रीमती ज्ञानदासुन्दरीका श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आर्थिक एवं विभिन्न प्रकारके निर्माण-क्षेत्रमें अतुलनीय सहयोग है। उनके निकट श्रीहरि-गुरु-वैष्णव सेवाओंके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सदस्यवर्ग चिर-कृतज्ञ रहेंगे और वे सबके धन्यवादके पात्र रहेंगे।

उक्त दम्पति एवं सभी गुरुसेवकोंकी यह इच्छा थी कि श्रीश्रीलगुरुदेवकी आविर्भाव-तिथि-पूजा—श्रीव्यासपूजाके दिन ही तदीय

श्रीविग्रह श्रीसमाधि मन्दिरमें प्रकटित हों। किन्तु अक्लान्त चेष्टा करनेपर भी हम उक्त तिथिके दिन उक्त कार्यमें असमर्थ रहे। अन्तमें श्रीश्रीगुरुवर्गोंकी आज्ञानुसार उन लोगों के ही आनुगत्यमें श्रीनवद्वीप परिक्रमाके तृतीय दिवस श्रीमन्माधवेन्द्रपुरी गोस्वामीको आविर्भाव-तिथि, फाल्गुनी शुक्ला द्वादशी १९ मार्च १९७० ई० गुरुवारके दिन नवनिर्मित समाधि मन्दिरमें तदीय श्रीविग्रह प्रकटित हुए हैं।

पूर्व दिन १८ मार्चकी संध्यामें संकीर्तनके माध्यमसे घटादि स्थापित कर कदली वृक्ष तथा आम्र-पल्लवोंके बन्धनवारसे सम्पूर्ण समाधि-मन्दिरको सुसज्जित कर अधिवास मनाया गया। दूसरे दिन १९ मार्चको परिव्राजकाचार्य त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके आनुगत्यमें स्वस्ति-वाचन, वैष्णव-होम, वास्तु-पूजा एवं श्रीविग्रह-प्रकट का कार्य वैष्णव-स्मृति श्रीहरिभक्तिविलासके अनुसार आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम पूज्यपाद श्रीश्रीमद् श्रौती महाराजने समितिके नवाचार्य परिव्राजकाचार्य श्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त राद्धान्ती महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीपाद कृष्णकृपा ब्रह्मचारी, श्रीपाद नवयोगेन्द्र ब्रह्मचारी और श्रीपाद वृषभानु ब्रह्मचारी आदि त्रिदंडिचरणों एवं उपस्थित अन्यान्य समस्त ब्रह्मचारियों द्वारा स्वस्ति-वाचन करवाया। तदनन्तर वेद, वेदान्त, श्रीमद्भागवत, उपनिषद् एवं गीताके पाठ तथा महासंकीर्त्तनके माध्यमसे पूज्यपाद श्रीश्रीमद् श्रौती महाराजके आनुगत्यमें श्रीश्रीगुरुगौरांग गान्धर्विका-गिरिधारीके अर्चन और भोगराग, वैष्णव-होम, वास्तु-पूजा, मन्दिर-प्रतिष्ठा एवं शास्त्रोक्त विधिवत् पंच-गव्य, पंचामृत, विभिन्न प्रकारकी औषधियोंसे सुवासित विभिन्न तीर्थोंके जलसे श्रीविग्रहका अभिषेक सम्पन्न हुआ। अभिषेकके समय सहस्रों विरहकातर गुरुसेवकों तथा सहस्रों श्रद्धालु दर्शकोंकी गगन भेदी जयध्वनि, हूलु-ध्वनि, शंख-ध्वनि तथा तुमुल हरिसंकीर्तन-ध्वनि समस्त दिशाओंमें व्याप्त हो रही थी। तत्पश्चात् सुस्वादु नैवेद्य आदि भोग सम्पन्न होने पर श्रीगुरुपादपद्मकी महासमारोहके साथ मध्याह्न भोगारति हुई। तत्पश्चात् श्रीगुरुपादपद्मके त्रिदण्डि संन्यासीगण, ब्रह्मचारिगण, गृहस्थ वैष्णवगण तथा उपस्थित श्रद्धालु सज्जनोंने श्रीगुरुपादपद्ममें श्रद्धा-पुष्पांजलि अर्पण की। उसके पश्चात् उपस्थित वैष्णव तथा सज्जनोंने अनुकल्प-प्रसाद ग्रहण किया।

इस महोत्सवमें जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके) अनुकम्पित परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिविलास भारती महा-

राज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराज, त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिकङ्कण तपस्वी महाराज, श्रीश्रीमद् कृष्णदास बाबाजी महाराज, श्रीश्रीमद् मुकुन्ददास बाबाजी महाराज, श्रीपाद नारायण दासाधिकारी आदि परमपूज्य वैष्णव लोग उपस्थित थे । इसके अलावा त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् भक्ति अर्णव परमार्थी महाराज, त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिकमल पर्वत महाराज आदि अनेकों त्रिदण्डि संन्यासीगण पधारे थे ।

संध्याको श्रीश्रीगुरुगौरांग गान्धर्विका-गिरिधारी श्रीराधाविनोदबिहारी एवं श्रीलकोलदेवकी आरतिके पश्चात् परम पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य त्रिदंडिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके सभापतित्वमें आयोजित सभामें पूज्यपाद सभापति महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीमद् भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीहरिचरण ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने गुरुदेवके अप्राकृत चरित्र, उनकी अप्राकृत शिक्षाएँ, अतुलनीय गुरुनिष्ठा, शिष्य-वात्सल्य, शरणागत-पालन, मौलिक दार्शनिक विचार, हरिसेवामें दृढ़ता, मायावाद-खण्डनकारिता आदि विविध विषयों पर अत्यन्त हृदयग्राही भाषण प्रदान किए ।

श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव

पिछले वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्तके मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें ३ चैत्र, १७ मार्चसे लेकर ९ चैत्र, २३ मार्च तक श्रीश्रीगौर जन्मोत्सव एवं श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमा विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए हैं ।

८ चैत्रको श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भाव-वासरकी संध्या तक निर्जला उपवास रहकर श्रीचैतन्य भागवत पाठ हुआ । शामको धर्म सभामें सभी वक्ताओंने श्रीमन्महाप्रभुके दान-वैशिष्ट्य, तत्त्व, शिक्षाएँ आदि पर प्रकाश डाला । दूसरे दिन ९ चैत्रको विशेष महोत्सवमें निमंत्रित-अनिमंत्रित सभी सज्जनों को महाप्रसाद वितरण किया गया ।

—प्रकाशक

पूतना-बध

—डा० एस० एल० चतुर्वेदी
एम. ए. पी-एच. डी.

यशोदाके प्राङ्गणमें,
चहल-पहल थी मंगलमय उत्सवोंकी, नित्य नवोत्साह नवजात
शिशुके लाभका वारिधि उमड़ रहा था, हर वृद्ध वनिताके,
बाल और युवाके हृदयोंमें, वर्षाका पानी ज्यों।
गोकुलमें नन्दकी—
भामिनीके पास आती थीं व्रजकी बधूटी वर-वेष धारि मिलने
को उससे और निरखने उस सजल जलदकी सी कान्ति वाले
छौनाको, जिसको निहारि विलज्जित थे रति-पति कलानाथ।
नन्दकी नारि सहज भावसे
देती थी अङ्कमें शिशुको सभीकी
मन्द मुसकाती मुख देखके सुअनका किलकता हुआ सा
कल-भावसे भरा हुआ।
मुखको चूमतीं थीं, मन्द गुनगुनाती रंच,
पुलक पुचकारतीं थीं नारियाँ नवोढ़ा, प्रोढ़ा,
वृद्धा स्वमति अनुसार सार करती थीं बार-बार।
वारतीं थीं प्राण-धन व्रज-पति नन्दन पर।
खेलतीं थीं उसको खिलातीं थीं उछालती थीं बोलतीं थीं
और करती थीं अस्फुट शब्दोंमें और करती थीं विविध
भाव मय मूक अभिनय वे।
नवल प्रसूता नारि उसको करातीं थीं प्रेमसे पय-पान
और अपनेको मानतीं थीं धन्य कृतकृत्य सी।

एक दिवस नन्दजी
मथुरा गये थे राज काजके निमित्त और घरमें बचीं
थीं वृद्ध-माता यशोदा ही और मन लगानेको आतीं थीं
कामिनी अनेक रसभीनी बात करतीं थीं प्रेमसे।

देखी थीं सभीने एक
नवल नवोढ़ा नारि आ रही है मन्द-मन्द गतिसे गमन किये
जिसको निहारि किसी सरमें, मरालोंके मंजु शिशु जा
छिपें हों और करिणि निज नाथोंका संग तजि
काननके अन्दर ही।
देखकर उसके विलोचनोंको बार-बार
आते थे मधुप होकर प्रमत्त ही;
और छिप जाते थे सरसिज सरोवरमें मीन
मकरालय, काननमें कुरंग भी।
होता था विलज्जित सा राका-पति चन्द्रमा
करके अवलोकन आननको आपको।
उन्नत उरोजोंमें गरलका विलेपन कर,
कलित कंचुकी सुष्ठु-साडीको धारि कर
बढ़ती चली आ रही थी घन मध्य जिमि दामिनी

कलित कुचोंकी कांति कर्षित कर रही थी
चित्त, मानो दो निम्नमुखी कनक-कटोरा हों, किंवा कोक युग्म
पड़े प्रेमके प्रवाहमें अथवा कोकनद पर मधुप इक बैठा
आन, भावना सरोवर सा हृदय गम्भीर था।
तीव्र-पुनः मन्थर गतिसे बढ़ती हुई भावसे विभोर मोर
रोर सुनती हुई, जाती थी बाल तब उरजयों उछलते
मानों सुधाके चषक थे वे।

अथवा चक्रवाक-युग मिलनेको आतुर हैं। पार्श्व
पड़ी माल, लाल मोती और नीलमकारी, प्रस्तुत करती
थी दृश्य पावन प्रयाग का।

अथवा कम्बुनिसृत अंक शम्भुके मस्तक पर
पड़ती विष-मयी हो दूर हट जाती हैं और
उस पर दौड़ जाती रुद्र-नैन लालिमा।

(क्रमशः)